विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ७ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२१ • भाद्रपद / अश्विन पूर्णिमा [शक] • दि. २७-९/२६-१०-१९७७ • अंक ४/५

प्रवचन प्रवाह

१ (क)

हमारी साधना का पहला दिन पूरा हुआ। अब हमारे पास काम करने के लिए ९ दिन और रह गए हैं।

पहला दिन जरा कठिनाइयों का दिन होता ही है। इन कठिनाइयों के अनेक कारण होते हैं। एक छोटा सा कारण तो यह भी होता है कि व्यवस्था करने वाले, नए-नए साधकों को उनकी आवश्यकतानुसार स्थान और सुविधा देने का भरकस प्रयास करते हैं, लेकिन फिर भी थोड़ी बहुत खामियां रह ही जाती हैं जो कि एक दिन पूरा होते-होते दूर होती हैं। दूसरा यह कि साधक के लिए घरबार छोड़कर एक नए वातावरण में अपने आपको स्थिति के अनुकूल ढाल लेने में भी थोड़ी सी दिक्कत होती है। केवल रहन-सहन की ही दिक्कत नहीं है। वैसे भी शरीर ने अपना एक स्वभाव बना लिया है और उसी प्रकार मन ने भी। अपने ही द्वारा बनाए हुए इस स्वभाव के शिकंजे में तन भी कैद है और मन भी कैद है। इस स्वभाव शिकंजे के बाहर उसे निकालना चाहें, नए स्वभाव में ढालना चाहें तो उसे अच्छा नहीं लगता। न शरीर को अच्छा लगता है न मन को। शरीर भी विद्रोह करता है और मन भी विद्रोह करता है। यह भी एक कारण है जिसकी बजह से पहला दिन कठिनाइयों में गुजरता है। कठिनाइयों का एक कारण यह भी होता है कि साधक अब तक अपने किसी ढंग से ध्यान करता आया है, अपनी किसी विधि से साधना करता आया है। अब उसे एकाएक कहा जाता है कि उसे छोड़कर इस नयी विधि के अनुसार काम कर। भले दस दिन के लिए ही सही, पर एक बार तो उस पुराने अभ्यास को छोड़ना ही होगा। इससे मन में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं—मैं यह क्या करने लगा? अब तक जो कर रहा था, वह क्या सदोष था? उसे छोड़कर इसे क्यों अपनाऊँ? कोई धर्म-विरोधी काम तो नहीं करने लगा? इत्यादि इत्यादि। इस प्रकार की शंकाएं मन को विचलित बनाती हैं और साधना में कठिनाइयां पैदा करती हैं। गरज यह कि कई कारण एक साथ मिल जाते हैं और पहला दिन कठिनाइयों का दिन होता ही है। जैसे-जैसे दिन बीतते जायेंगे, ये प्रारंभिक कठिनाइयां अपने आप दूर होती चली जायेंगी। साधक अपने आपको नई परिस्थितियों के अनुकूल ढालने लगेगा और मन की जो शंकाएं हैं, झिझक है वे भी शनैः शनैः दूर होंगी। यह समझ लेना चाहिए कि जिस मार्ग पर चलने आए हैं, वह बोधि का मार्ग है, ज्ञान का मार्ग है। यहां अंधविश्वास को कोई जगह नहीं। और जिस मार्ग में अंधविश्वास को जगह नहीं हो, उस मार्ग के प्रति साधक स्वयं कैसे अंधविश्वास में बंध सकता है? हर कदम समझ-समझ कर ही उठाना है और हर कदम समझ-समझ कर उठाएं तो ही दृढ़ता के साथ उठा सकेगा। पांव डगमगायेंगे नहीं। मार्ग को, विधि को भलीभांति समझने के लिए ही यह शाम की घंटे-सवा घंटे की धर्म-चर्चा होगी, कि हम यह जो कर रहे हैं वह क्या है? कैसा है? ऐसा ही क्यों है? किसी अन्य प्रकार क्यों नहीं है? इन प्रश्नों के स्पष्टीकरण के लिए ही होगी। ताकि मन में कोई उलझन नहीं रह जाय। नहीं तो काम ही नहीं कर पायेगा।

यह सायंकालीन धर्म चर्चा किसी एक संप्रदाय-विशेष का पोषण करने के लिए अथवा अन्य संप्रदायों को नीचा दिखाने के लिए, किसी एक दार्शनिक मान्यता को स्थापित करने के लिए अथवा अन्य दार्शनिक मान्यताओं को खंडित करने के लिए नहीं होगी। यह ठीक है कि जिस विधि का अभ्यास कर रहे हैं, उसका स्पष्टीकरण करते हुए यह अवश्य बताया जायेगा कि हम ऐसा क्यों कर रहे हैं? अन्य किसी प्रकार क्यों नहीं करते? साधक को चाहिए कि शिविर में रहते हुए इन दस दिनों तक जैसे बताया जाय, ठीक वैसे ही करे। विधि को समझते हुए वैसा करे। और दस दिन इस विधि को पूरा न्याय देकर देखे। दस दिन के बाद हर व्यक्ति अपना मालिक है। जो-जो उचित लगे, जितना-जितना उचित लगे, उसे-उसे उतना-उतना ग्रहण करे। साधक दस दिन बिना

धम्म वाणी

सुसुखं वत! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा॥

धम्मपद १५/२.

तृष्णा से आतुर-व्याकुल लोगों के बीच, अहो! हम अनातुर-अनाकुल रहकर सुखपूर्वक जीते हैं। आतुर मनुष्यों में हम अनातुर रहकर विचरण करते हैं।

झिझक के काम करेगा तो साधना का पूरा–पूरा लाभ उठा सकेगा। इसीलिए काम आरंभ करते हुए दस दिनों के लिए आत्म समर्पण कराया गया था।

तो पहले हम यह समझेंगे कि यह सारा कुछ जो हम करते आए हैं, इसका लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? किस लिए हमने यह दस दिन का एक प्रकार का संन्यास लिया है? गृह–त्याग किया है? एक कारावास में बंधे है? समझ लेना चाहिए कि हम कोई धार्मिक कर्मकांड पूरा करने के लिए यहां नहीं आए। जिसके पूरा कर लेने पर हमें मुक्ति मिल जायेगी, मोक्ष मिल जायेगा। किसी प्रकार की सिद्धि या चमत्कार की आशा रखने वालों को भी समझना चाहिए कि वे गलत जगह आ गए हैं। गलत आदमी के पास आ गए हैं। हमें ऐसी सिद्धियों व चमत्कारों से कतई लेन–देन नहीं हैं। हमारे लिए तो यह सारी साधना एक जीने की कला है। हम कैसे जिएं? जीने को तो सभी जीते हैं पर जिसे देखो उसके जीवन में तनाव भरा हुआ है, खिंचाव भरा हुआ है, बेचैनियां भरी हैं, अशांति भरी हुई है। कोई इस बात को लेकर दुखी है तो कोई उस बात को लेकर गांठे बांधे जा रहा है। कोई ऐसा नहीं जिसके मन में खिंचाव–तनाव न हो। जो बेचारा अभाव में है वह उस अभाव के मारे दुखी है ही परन्तु वह नहीं जानता कि जिनके पास सब कुछ है वे उससे भी ज्यादा दुखी हैं। खूब इकट्ठा कर लिया—क्या हो गया? कहां सुख है? रात में नींद नहीं आती, दिन में चैन नहीं पड़ता। सोने की गोलियां लेनी पड़ती है, ट्रांक्विलाइजर्स लेने पड़ते हैं, तरह–तरह की दवाइयां लेनी पड़ती हैं।

हम यह नहीं कहते कि हमारी दिन–रात की जो आवश्यकताएं हैं–भोजन की, वस्त्र की, आवास की, परिवार–पालन की, उनको निरर्थक व दुनियादारी का झंझट कह करके दूर भागें। तो हमको जीना नहीं आया। और इन्हीं को सब कुछ मानकर येन–केन प्रकारेण प्राप्त करना ही है ऐसा मान कर चलें तो दूसरी अति पर जा पहुंचे। फिर जीना नहीं आया। अपने घर की, परिवार की, काम–धंधे की, पेशे–रोजगार की सारी जिम्मेदारियों को शांतिपूर्वक निभाते हुए हम कैसे अपने मन पर संतुलन कायम रख सकें! अन्यथा जरा सी अनचाही बात हो गई कि गांठ बांध ली। फिर उसको याद करते हैं, एक और गांठ बांध लेते हैं। फिर उसकी याद करके एक और गांठ बांध लेते हैं। इस प्रकार भीतर ही भीतर ऐसा गांठ–गंठीला मन हो गया कि जीना दूभर हो गया। साधना इसलिए है कि कैसे शांतिपूर्वक जी सकें। जब तक हमारा मन भिन्न–भिन्न प्रकार के विकारों से भरा हुआ है, उसमें गहरे राग हैं, गहरे द्वेष हैं, ईर्ष्या है, वैमनस्य है, दौर्मनस्थ है, भय है, वासनाएं हैं, तब तक उसे शांति नहीं मिल सकती। गांठ–गठीला रहेगा ही। ऊपर–ऊपर से मैं अपने आपको हजार धार्मिक कहता रहूं। बौद्ध हूं तो रोज अपने बुद्ध–मंदिर में जाकर नमस्कार करके समझूंगा मैं बड़ा धर्मवान हूं। हिन्दू हूं, किसी हिन्दू–मंदिर में जाकर किसी देवी–देवता के सामने सिर झुकाकर समझूंगा मैं बड़ा धर्मवान हूं। मुसलमान हूं तो मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ आऊंगा और समझूंगा मैं बड़ा धर्मवान हूं। ईसाई हूं तो रविवार को गिरजे में जाकर पादरीजी के प्रवचन सुन आऊंगा और समझूंगा मैं बड़ा धर्मवान हूं। यह नहीं कहते कि ये सारी बातें बेकार हैं। लेकिन अगर इन सारी बातों से मन की गांठें नहीं खुलती, तनाव दूर नहीं होता, खिंचाव दूर नहीं होता तो ये सारी बातें थोथी रूढ़ियां जैसी बन जाती हैं। हमारे काम की बात नहीं है।

वास्तविक धर्म क्या है? चित्त को विकारों से विहीन कर देना। चित्त को गांठों से दूर कर देना। निर्ग्रन्थ बना देना। निर्मल बना देना। निर्मल चित्त अपने स्वभाव से प्यार ही प्यार से भर उठेगा। करुणा ही करुणा से भर उठेगा। मुदिता ही मुदिता से भर उठेगा। समता में स्थित हो जायेगा। सभी परिस्थितियों में समता नहीं खोने पाए, संतुलन नहीं खोने पाए–यही शुद्ध चित्त का स्वभाव है। ऐसा स्वभाव अगर हमारे अंदर आ जाता है तो हिन्दू अपने आपको हिन्दू कहे, मुसलमान अपने आपको मुसलमान कहे, जैन अपने आपको जैन कहे, बौद्ध अपने आपको बौद्ध कहे, ईसाई अपने आपको ईसाई कहे–क्या फर्क पड़ता है इन नामों में? आदमी बन गया। धर्म इन संप्रदायों में नहीं बंधा करता। चित्त की शुद्धता ही धर्म है। यह चित्त की शुद्धता हमारे जीवन–व्यवहार में उतरने लग जाय तो हम सचमुच धर्मवान हुए। अन्यथा हम अपने आपको धोखा दिए जा रहे हैं। इससे हमें शांति नहीं मिल सकती, चैन नहीं मिल सकता। तो हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने चित्त को विकारों से विहीन कर दें जो कि हमें इस जीवन में इतने दुखी बना रहे हैं।

जब देखो तब दुखी हैं, रोए जा रहे हैं। और यह दुखी होना, रोना, व्याकुल होना, तनाव से भरना, खिंचाव से भरना, गुस्से से भरना द्वेष से भरना, किसी एक जातिविशेष का गुण तो है नहीं। किसी एक संप्रदाय–विशेष का गुण तो है नहीं। सब के मन एक जैसे हैं। जहां इस तरह की गंदगियों से भरा ऐसे विकारों से विकृत हुआ, वहीं दुखी हो जायेगा। हिन्दू है और क्रोध करता है तो भी दुखी होगा, मुसलमान है क्रोध करता है तो भी दुखी होगा, ईसाई है क्रोध करता है तो भी दुखी होगा, बौद्ध है क्रोध करता है तो भी दुखी होगा। फला संप्रदाय का व्यक्ति तो क्रोध करने पर भी दुखी नहीं होता, विकारों से भर जाने पर भी दुखी नहीं होता। ऐसा तो कुछ है नहीं। किसी भी संप्रदाय का व्यक्ति हो, किसी भी दार्शनिक मान्यता को मानने वाला हो, विकारों से भरेगा तो दुखी हो ही जायेगा। यह रोग सार्वजनीन है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है। अतः इसका इलाज भी सार्वजनीन ही होना चाहिए, सार्वदेशिक ही होना चाहिए, सार्वकालिक ही होना चाहिए।

सार्वजनीन रोग का कारण समझें! क्यों दुखी हो जाता हूं? भाव है तो भी दुखी हो जाता हूं, अभाव है तो भी दुखी हो जाता हूं। तो भाव–अभाव के कारण नहीं। इस दर्शन को मानता हूं तो भी दुखी हो जाता हूं, उस दर्शन को मानता हूं तो भी दुखी हो जाता हूं। तो दर्शनों के मानने न मानने से भी नहीं। इस ईश्वर को मानता हूं तो भी दुखी हो जाता हूं, उस ईश्वर को मानता हूं तो भी दुखी हो जाता हूं, किसी को नहीं मानता तो भी दुखी हो जाता हूं। तो इस मानने और न मानने से भी नहीं। इसके पीछे कोई और कारण समाया हुआ है। प्रकृति का अपना एक नियम है, एक सच्चाई है, एक कानून है जिसे

हम ऋत कह सकते हैं, जिसे हम धर्म कह सकते हैं। आग का धर्म जलाना है। मेरा हाथ अंगारे को छू जाय तो जलेगा ही। चाहे मैं किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न होऊं? किसी भी दार्शनिक मान्यता का मानने वाला क्यों न होऊं? वह आग कुछ सुनने वाली नहीं है, वह तो जलायेगी ही। अगर मुझे उस आग की जलन से अपने आपको बचाना है तो मेरा हाथ उस आग से अलग रखना पड़ेगा। यह हो नहीं सकता कि आग पर तो हाथ रहे और केवल मात्र किसी बुद्धिविलास के बल पर मैं उस आग की तपन से बच जाऊं।

हम जिस परिवार में जन्मे हैं, पले हैं उसके वातावरण ने हमारे मन पर बचपन से ही अपना एक लेप चढ़ा दिया है–हमारा दर्शन ऐसा है, हमारी मान्यता ऐसी है, हमारी परंपरा ऐसी है। उन सारी परंपराओं को, उन सारी दार्शनिक मान्यताओं को एक ओर रख करके हम अपने दुख के कारण को समझकर यदि उस कारण को दूर कर लेते हैं तो निश्चितरूप से दुःख से दूर हो गए। दुख का कारण हमारा विकार है। विकारों को दूर करने के लिए अगर हमें कोई साबुन मिलती है जो इसे धो डालती है तो निश्चितरूप से हमारे कल्याण की बात हो गई। अब उस साबुन पर 'हमाम' लिखा है या 'लक्स' लिखा है, कोई भी मार्का क्यों न हो, उससे हमें क्या लेना–देना? हमारा मैल उतारती है या नहीं? उतारती है तो बड़ी अच्छी है। सारा मार्ग महज इसलिए है कि चित्त कैसे विकारों से विहीन हो सके। ताकि ये दैनिक दुःख जो उत्तापित किए जा रहे हैं, पीड़ित किए जा रहे हैं, उनसे बाहर निकल सकें। तो ही स्वयं भी शांति से जी सकेंगे और दूसरों को भी शांति से जीने दे सकेंगे। जब तक मैं स्वयं उत्तापित हूं, पीड़ित हूं, दुःखी हूं तब तक मेरे आस–पास जो आयेगा उसे भी दुखी ही बनाऊंगा। मेरे पास बांटने के लिए और कुछ है ही नहीं। दुख ही है, वही बांटूंगा। सब को वही बांटूंगा। और जहां मेरे भीतर से पीड़ा निकल गई, तनाव निकल गया, खिंचाव निकल गया; अन्तर प्यार से भर गया, मैत्री और करुणा से भर गया तो जिसके साथ मेरा संपर्क होगा, उसे प्यार ही बांटूंगा, स्नेह ही बांटूंगा। चारों ओर शांति का वातावरण तैयार करूंगा। स्वयं भी सुखी रहूंगा औरों को भी सुख से रहने का अवसर दूंगा। इसीलिए कहते हैं "जीने की कला है"। धर्म जीने की ही कला है। कैसे जिएं? विकारों से भरा हुआ आदमी जीना नहीं जानता। दुख ढोता है। स्वयं भी दुखी होता है औरों को भी दुखी करता है। तो साधना का हमारा लक्ष्य स्पष्ट हुआ।

.....क्रमशः

शिविरार्थियों से अनुरोध

१) विद्यापीठ के आरंभ के पिछले वर्ष का अनुभव रहा कि शिविरार्थी विषय की गंभीरता को समझे बिना शिविर के लिए अपनी बुकिंग तो करवा लेते हैं परन्तु चेतावनी दिए जाने के बावजूद भी समय रहते सम्मिलित न हो सकने की सूचना नहीं देते। इससे अनेक प्रतीक्षा–रत शिविरार्थियों को धर्मलाभ से वंचित रह जाना पड़ता है। अतः सभी शिविरार्थियों से अनुरोध है कि वे अपनी बुकिंग तभी कराएं जबकि अपने आपको शत–प्रतिशत सम्मिलित हो सकने की स्थिति के अनुकूल पाएं। आपातस्थिति के कारण अचानक कोई बाधा उपस्थित हो जाय तो तुरंत तार से सूचित करें ताकि प्रतीक्षा करने वाले शिविरार्थियों को धर्मलाभ दिया जा सके।

२) नवीन सत्र में हर महीने केवल एक ही शिविर लगा करेगा। ऐसी अवस्था में इन शिविरों में नए साधकों को ही प्राथमिकता दी जायेगी। पुराने साधकों को चाहिए कि वे 'स्वयं–शिविरों' में सम्मिलित होकर धर्मलाभ प्राप्त करें। उनकी सुविधा के लिए निम्न तारीखें निश्चित की जा रही हैं :–

स्वयं–शिविर

१) २२–१०–७७ से २–११–७७ तक
२) २–११–७७ से २३–११–७७ तक
३) २८–११–७७ से ९–१२–७७ तक
४) २१–१२–७७ से १– १–७८ तक

३) स्वयं–शिविर में केवल वे पुराने साधक ही सम्मिलित हो सकेंगे जो कि विद्यापीठ के अनुशासन का कड़ाई से पालन कर सकें। कोई साधक यदि पूरे शिविर में सम्मिलत न हो सके तो वह अपनी सुविधानुसार बीच में भी कम दिनों के लिए सम्मिलित हो सकता है। परन्तु तब भी आवश्यक है कि व्यवस्थापक से अपना स्थान सुरक्षित रखने की स्वीकृति प्राप्त कर ले।

४) यथासंभव प्रत्येक शनिवार रविवार को पूज्य गुरुजी 'धम्मगिरि' पर उपस्थित रहेंगे। अतः जिस किसी साधक को कोई विशेष कठिनाई हो, इन स्वयं–शिविरों में भी उनसे मार्ग–दर्शन प्राप्त कर सकेगा।

स्वयं–शिविर में अन्य सभी सुविधाएं उपलब्ध रहेंगी।

आवश्यक जानकारी

इस वर्षा की समाप्ति पर हैद्राबाद व इगतपुरी के दोनों साधना केन्द्रों में "अष्टकोणीय दुमंजिला पगौड़ा (स्तूप)" के निर्माण का काम आरंभ करने का निर्णय लिया गया है। यही प्रमुख केन्द्र कहलायेगा जहां से कि आचार्य द्वारा दीक्षा देने का काम हुआ करेगा। अतः इस निमित्त जो साधक हैदराबाद के लिए दान देना चाहें वे निम्न नाम–पते पर अपने दान भेज सकते हैं :–

"विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र"
१२–६, नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, हैदराबाद–५०० ०३५.

और इगतपुरी के लिए निम्न नाम–पते से अपने दान भेज सकते हैं :
"सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट"
२०, शहीद भगतसिंह मार्ग, २ रा माला, सिलवेस्टर बिल्डिंग, बम्बई–४०० ०२३.

(इनके निर्माण का काम आरंभ करने में प्रत्येक के लिए लगभग एक लाख की प्रारंभिक लागत आंकी गयी है।)

॥ भवतु सब्ब मंगलं ॥

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक १४३ **इगतपुरी** (वि. वि. वि.) दि. १६–११–७७ से २७–११–७७ तक (हिन्दी)

" १४४ " " दि. १०–१२–७७ से २१–१२–७७ तक (अंग्रेजी)

संपर्क :– **व्यवस्थापक**, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि इगतपुरी ४२२ ४०३ (नासिक)

नोट :– १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी प्रवचन सुनने हेतु हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहेगी।

३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

पाठकों से क्षमा–याचना

इस बात का खेद है कि गत सितम्बर महीने का 'विपश्यना' अंक समय पर नहीं प्रकाशित हो सका। अब सितम्बर/अक्टूबर का यह संयुक्त अंक आपके हाथ में है। इस निमित्त हुई असुविधाओं के लिए कृपया क्षमा करेंगे। (संपादक)

मीरा टाकीज

खैरताबाद

हैदराबाद

की मंगल कामनाओं सहित।

दोहे धर्म के

अगले क्षण की कल्पना, अगले क्षण की चाह।
खो बैठा संतुष्टि का, निर्मल चित्त प्रवाह॥
सुख छाया संतुष्टि में, तृष्णा है दुख धाम।
जो "न है" सो दुखद है, जो "है" सो अभिराम॥
चाहत चाहत चाहते, मन खो बैठा चैन।
रोवत रोवत रोवते, बीत रहे दिन रैन॥
वह जीवन संतोष का, वह जीवन निष्पाप।
पाप जगा, तृष्णा जगी, जगा अमित संताप॥
राग जगा तो हो गया, अन्तर डांवा डोल।
कहां गंवाया बावले! सुख का वह माहौल?
रात दिवस व्याकुल रहे, होय न पूरी आश।
भला ओस की बूंद से, किसकी बुझती प्यास?

दूहा धरम रा

मन मैं निपजी कामना, खोयो सुख आराम।
कठै गयी संतोस की, बै घड़ियां अभिराम?
सुपनां पूरा करण की, जितनी जागी चाह।
सुपनां पूरा ना हुयां, उतनी अंतर दाह॥
बै घड़ियां सुख सांति की निरमल मन दिन रैन।
अै घड़िया संताप की, राखै मन बेचैन॥
धरम छुट्यो तड़पन लग्यो, ज्यूं पंछी बिन डैन।
आयी घड़ियां पाप की, खो बैठ्यो सुख चैन॥
तिसना मन मथणौ लगी, जगी आस पर आस।
छूटन लाग्यो सांति सुख, तड़पन लाग्यी प्यास॥
के मिलग्यो रै बावळा! कर कै खींचा तान?
छोड़ धरम कै धार पर, धरम करै कल्यान॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : **मधु काबरा**, सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : **अक्षरचित्र मुद्रणालय** सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१
विज्ञापन : आधा पृष्ठ रू. ४००/–, चौथाई पृष्ठ रू. २०० /–, वार्षिक शुल्क रू. ५/, आजीवन शुल्क रू. ५१/–

"विपश्यना"
पो. रजि. नं. NSK/64
प्रेषक :
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी, ४२२ ४०३.
(नासिक – महाराष्ट्र)